उनके दुःस्वप्न, हमारी विरासत और नयी सदी की उम्मीदें

नयी सदी (नयी सहस्त्राब्दि) के स्वागत में पूरी दुनिया में जश्न मनाया गया। रिकार्ड तोड़ सहस्त्राब्दि पार्टियां हुईं। बिल क्लिण्टन, महारानी एलिजाबेथ-टोनी ब्लेयर से लेकर पोप जॉन पॉल और समूची दुनिया के शासकों ने अपनी-अपनी जनता को नयी सहस्त्राब्दि के आगमन पर शुभकामनाएं दीं। बिल क्लिण्टन ने न्यूयार्क में टाइम स्क्वायर पर शताब्दी को दर्शाने वाली एक टाइम कैप्सूल का उद्घाटन करने के बाद अपने सन्देश में कहा कि "उन्हें खुशी है कि अमेरिका समृद्ध है और मजबूत अर्थव्यवस्था के साथ नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर रहा है।" इस मौके पर टाइम स्क्वायर में एक बड़ी स्क्रीन लगायी गयी जो पूरे विश्व की राजधानियों में हो रहे सहस्त्राब्दि समारोहों का सीधा प्रसारण कर रही थी।

हमारा देश भी इस सनकी उल्लास में पीछे नहीं था। गोवा के समुद्र तट से लेकर पांच सितारा होटलों तक में इण्टरनेट, मोबाइल और कार वालों की दुनिया ने पूरी तड़क-भड़क और सज-धज के साथ हंगामी अन्दाज में नयी सहस्त्राब्दि का स्वागत किया। जीभर कर पटाखे छोड़े गये, शैम्पेन-बीयर की बोतलें खाली की गयीं और "आई लव माई इण्डिया" की गर्वानुभूति के साथ आनन्दातिरेक की सीमा तक नाच-गान हुआ। मध्यवर्ग का जो तबका इस जश्न में सीधे शरीक नहीं हो सका उसने भी ठंडी आहें भरते हुए, दूरदर्शनी पर्दे पर ही सही, बॉलीवुड के सितारों की चकाचौंध में नयी सहस्त्राब्दि के आगमन की सुखानुभूति-गर्वानुभूति में शरीक होने की कोशिश की। अन्ततोगत्वा, 'मिलेनियम बेबी' भी दुनिया भर में पैदा हो ही गये। हम सबने इनकी जन्मदात्री मांओं के गर्वीले चेहरे भी अखबारों में छपे देखे।

आंसुओं के समन्दर में बने ऐश्वर्य की द्वीपों और विलासिता के टापुओं में रहने वाले लोगों की खुशियों को, उनके आनन्दातिरेक को समझा जा सकता है। वे फिलहाल खुश हैं, निश्चिन्त हैं कि बीसवीं सदी खत्म होने पर समन्दर में किसी प्रचण्ड ज्वार के आने का खतरा नहीं है। इसलिए, वे हर्षातिरेक में सबकुछ भूलकर आगे ही आगे बढ़ते जाना चाहते हैं।

लेकिन, हमारे जैसे लोग जो श्मशान में बैठकर रागभैरवी गाने का लुत्फ उठाना नहीं जानते जिनकी तादाद दुनिया में बहुसंख्य है, इस सहस्त्राब्दि सन्निपात से आनन्दित होना भला कैसे गवारा कर सकते हैं। हम सब कुछ भूलकर "जो भी है यही एक पल है" की क्षणजीविता से कैसे रोमांचित हो सकते हैं। हमें तो बीसवीं सदी का अन्त भी याद है, उसका मध्यान्तर भी और उसकी शुरुआत भी।

हमें उड़ीसा के चक्रवात में हजारों मारे गये लोग, लाखों बेघर लोग और "राहत-सामग्रियों" की ओर हाथ फैलाए दृश्य याद हैं। यह भी याद है कि ऐश्वर्य-द्वीपों में रहने वाले लोग किस तरह लाखों लोगों को चक्रवात के रहमो-करम पर छोड़कर अपने सुरक्षित ठिकानों में चले गये—आखिर चक्रवात राहत कार्य को अंजाम जो देना था उन्हें! हमें पूर्वी उत्तर प्रदेश की बाढ़ याद है। हमने कानपुर के औद्योगिक कोलाहल को पिछले दस वर्षों में मरघटी सन्नाटे में तब्दील होते देखा है। हम आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र के उन किसानों को नहीं भूले हैं, जिन्होंने सामूहिक आत्महत्याएं कीं। हम गत वर्ष गणतंत्र दिवस पर संसद-भवन के सामने सर्वेश नामक मजदूर के आत्मदाह और उच्चतम न्यायालय के उस न्याय को भला कैसे भुला सकते हैं जिसने पर्यावरण बचाने के नाम पर लाखों लोगों के घरों के चूल्हे बुझा दिये हैं। हमें नयी सहस्त्राब्दि के ठीक अड़तालीस घण्टे पहले आत्मदाह करने वाले उड़ीसा के प्रशिक्षित बेरोजगार शिक्षकों की बेबसी भी याद है।

इस जैसे बहुत सी चीजें — अनगिनत आंसू, अनगिनत त्रासदियां — जो बीसवीं सदी की समृद्धि की सम्पूरक हैं — याद है हमें!

हिरोशिमा-नागासाकी में अमेरिकी बमों से बंजर धरती—विकलांग पीढ़ियां, नाजियों के गैस चैम्बर—यहूदियों का कत्लेआम, भारत-पाक विभाजन—ट्रेनों से आती-जाती लाशें, चेरनोबिल नाभिकीय 'दुर्घटना', भोपाल में यूनियन कार्बाइड की जहरीली गैस—जिसने रातों-रात एक जिन्दा शहर को श्मशान में बदल दिया—पनामा, ग्रेनेडा पर अमेरिकी 'कारपेट बॉम्बिंग', जनतंत्र के नाम पर इराक में नाटो बमबारी से मची तबाही का मंजर, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण हर साल दवा के अभाव में दम तोड़ते लाखों इराकी बच्चे, मानवाधिकारों की रक्षा के नाम पर यूगोस्लावविया में नाटो-बमबारी के धमाके अब भी दिमागों में गूंज रहे हैं... और बाबरी मस्जिद का ध्वंस भी — सूरत-बम्बई में चमकते त्रिशूल...पादरी स्टेंस... वह सब कुछ जिसे एक जिन्दा कौम और उस कौम के जिन्दा लोग नहीं भूल सकते।

हमें कानून-व्यवस्था की बहाली के नाम पर आपात काल के दौर में किशता-गौड़ व भूमैया की फांसी भी याद है और हमें भावी आपात काल की आहटें भी सुनायी दे रही है। हमें कलकत्ता की गलियों में सातवें दशक में हजारों उन शानदार नौजवानों का 'इनकाउण्टर' भी याद है जिनके रास्ते सवालों के घेरे में हो सकते हैं, सपने नहीं। बिहार, दण्डकारण्य और रायल सीमा क्षेत्र

में आतंकवाद से निपटने के नाम पर चल रहा सरकारी आतंकवाद भी हमारी नजरों के सामने है।

कहने का मतलब कि समूची बीसवीं सदी में – युद्ध के दिनों में भी और शान्ति के दिनों में भी – पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के उत्पादन तंत्र, राजतंत्र और समाजतंत्र ने जो तबाहियां रची हैं– वह सब कुछ, सारे दृश्य, सभी मंजर वे लोग कभी नहीं भूल सकते, जो समूची दुनिया में आज भी एक बेहतर मानवीय दुनिया के सपनों के साथ जी रहे हैं। इसलिए, क्योंकि हम जानते हैं कि त्रासदियों का विस्मरण हमारे संकल्पों को कमजोर बनाता है और हमारी तड़प को खतरनाक मुर्दा-शान्ति की ओर ले जा सकता है।

इसके साथ ही, समूची बीसवीं सदी के उन गौरवशाली संघर्षों व महान अभियानों को भी, जिन्होंने पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के दुर्गों में भगदड़ मचा दी थी, हम कैसे भुला सकते हैं। उन महान गौरवशाली सामाजिक प्रयोगों को, जो मेहनतकश वर्ग के नेतृत्व में दुनिया के कुछ हिस्सों में अंजाम दिये गये, भूल जाने देना, उनके लिए सम्भव नहीं, जो मानवता के सुन्दर भविष्य के लिए जीते हैं और उसी के लिए मरते हैं।

1917 की महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति, जब मजूदर वर्ग ने पहली बार अपनी एक राज्यसत्ता कायम की और शोषण-उत्पीड़न से मुक्त एक बिल्कुल भिन्न नये समाज की दिशा में शुरुआती व्यावहारिक कदम उठाये, उपनिवेशवाद की जंजीरों से मुक्त होने के लिए एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के देशों की जनता के महान मुक्ति संघर्ष की गाथाएं, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रूसी लाल सेना के हाथों मगरूर नाजी फौजों का मानमर्दन और आधे यूरोप में जनता के जनवादी गणराज्यों की स्थापना, 1949 में चीनी जनता द्वारा साम्राज्यवादी-सामन्तवादी शोषण के जुए को उतार फेंकना और पहले जनता के जनवादी गणराज्य की स्थापना और फिर समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ने के लिए किए गये चमत्कारिक महानतम सामाजिक प्रयोग—महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति—हाथी दांत मीनारों में रहने वाली आबादी के लिए एक भीषण दुःस्वप्न है। लेकिन यह हमारी विरासत है। इसलिए, वे इन सबको जल्दी से जल्दी अपनी और जहां तक सम्भव हो जनता की स्मृतियों से मिटा देना चाहते हैं। इसलिए बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में – जब चीन भी माओ-त्से-तुङ. की मृत्यु के बाद सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों की तरह पूंजीवादी बिरादरी में लौट आया – तो ये कोशिशें नये वेग से शुरू हुईं और समाजवाद की मृत्यु ही नहीं बल्कि बेहतर दुनिया के सपनों की ही मृत्यु की घोषणाएं की जाने लगीं।

लेकिन 'समाजवाद के पतन' के बारे में उनकी चीख-पुकार जल्दी ही गले की घुरघुराहट में तब्दील होने लगी। तीसरी दुनिया में पूंजीवादी विकास के एक मॉडल के रूप में बहुप्रचारित "एशियाई चीते" भीगी बिल्ली बन चुके हैं। बाजार और मुनाफे का उनका भूमण्डलीय तंत्र जिन अन्तकारी रोगों-संकटों का शिकार है, उससे निजात पाने का कोई अचूक नुस्खा उन्हें नहीं मिल पा रहा है। लिहाजा आपसी छीना-झपटी और तीसरी दुनिया के देशों की जनता की लूटमार दोनों ही दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे एक दूसरे नये संकट के पैदा होने की दुश्चिन्ताएं भी उन्हें सताने लगी हैं। समूची तीसरी दुनिया में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों से बारूद का पलीता बिछता जा रहा है। बर्बर दमन के बावजूद पेरू, कोलम्बिया में क्रान्तिकारी छापामार देशी शासकों और विदेशी आकाओं को नकदम किये ही हुए हैं, मेक्सिको के चियापास प्रान्त में जपाटिस्टा किसानों के विद्रोहों ने भी उनकी नींदें हराम की ही थीं और अब बीसवीं सदी बीतते-बीतते मेक्सिको के छात्रों-नौजवानों ने भी उदारीकरण-निजीकरण के नीतियों के खिलाफ बगावत शुरू कर दी है। ईरान में भी छात्र-युवा अपने कठमुल्ला शासकों और उनके सरपरस्तों के अत्याचारों के खिलाफ सड़कों पर उतर चुके हैं। हमारे देश में भी विभिन्न कामगार वर्ग अपनी अस्तित्व की लड़ाई को नयी मंजिल में ले जाते हुए दिखायी दे रहे हैं। सदी खत्म होते-होते जो संकेत मिलने शुरू हुए हैं उन्होंने दुनिया के पूंजीवादी शासकों को बेचैन कर रखा है। ऐसे में विनाश के कगार पर खड़े होकर वे सिर्फ खुशफहमियों के सहारे ही जीवित रह सकते हैं। अपने सहस्त्राब्दि सन्देश में क्लिण्टन का यह कहना कि उनका देश एक मजबूत अर्थव्यवस्था के साथ नयी सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर रहा है, ऐसी ही एक खुशफहमी है।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही शहीदे-आज़म भगतसिंह ने कहा था कि "आज का धनिक समाज एक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है।" उस समय भी यह एक साहित्यिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं थी। और आज तो यह उस समय से अधिक प्रखर सच्चाई बन चुकी है। "शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग" जिस "भयानक खड्ड पर चल रहे हैं", उससे यदि बचना है तो आज की दुनिया के रंग-ढंग को जितनी जल्दी हो सके, पूरी तौर पर उलट-पुलट करना होगा। हमें विस्मृति के अन्धेरे से बाहर निकलकर गुजरी सदी की अपनी विरासत को सहेजना होगा और तैयारियों को तेज करना होगा। वह दिन अब फिर से नजदीक आता दिख रहा है, जब शान्त महासमुद्रों में प्रचण्ड ज्वार उठेंगे, जब ऐश्वर्य की मीनारें और विलासिता की टापू इन प्रचण्ड जलराशियों में जलसमाधि ले लेंगे।

इसलिए, आज निराशा की गुफाओं से समाज को बाहर निकालने के लिए अनथक प्रयासों की जरूरत है। सुषुप्त आत्माओं के आवाहन की जरूरत है। सर्वोपरि तौर पर यह जिम्मेदारी युवा वर्ग की है क्योंकि युवा रक्त की गर्मी से ही नाउम्मीद की बर्फ पिघल सकती है। बीसवीं सदी स्वयं इसका प्रमाण है। और यह भी हमारी एक विरासत है। शिम्बोर्स्का के शब्दों में – "हमें विरासत में उम्मीद भी मिली है।"